"त्यौहार अथवा फंदे"

"धुर की वाणी आयी - तिन सगली चिंत मिटाई ।" "बाणी गुरू, गुरू है बाणी ! विच बाणी अमृत सारे । गुरू बाणी कहे, (उपदेश) सेवक (बनता है) जन माने, परतख (प्रगट होना शब्द का) गुरू निस्तारे (आत्मा का कल्याण) !" त्यौहार अथवा फंदे ? (संसार मास्टर महात्मा घसीटा राम जी या मास्टर महात्मा रलिया राम जी या मास्टर घटिया राम जी या ब्रह्म-काल इत्यादि का फंदा है)।

"लोहड़ी" फसल से सम्बन्धित एक देव लोक पूजा का विधान हैं और मांस शराब से जुड़ कर इन से चिपक जाता है नतीजा प्रत्यक्ष ही है ।

"देव" केवल कर्म का ही अनुसरण करता है । लेकिन इससे इष्ट नहीं है कि उसका पशु उससे ऊपर के लोक में रहे अतः इसके लिये वह अवश्य प्रयत्न करता है । बिना कीमत चुकाये कोई भी कामना असंम्भव ही है । इस या उस कहीं भी बिना "पुरुषार्थ" कुछ भी प्राप्ति कल्पना ही है । वरदान अथवा श्राप और आर्शीवाद केवल "देव" की "सूचना" मात्र ही है। बिना शुभ या अशुभ कर्म के ये सब कल्पना में भी अर्थहीन ही साबित होगें। अगर "देव" अपने तप में से कटौती कर कुछ देता है तो बदले में उस का उपभोक्ता बने रहने का फल भी गिफ्ट के रूप में मिलता है।

"वैसाखी" भी फसल से सम्बन्धित एक देव लोक पूजा ही है तथा नया वर्ष तथा खालसा स्थापन आदि और कई कुछ जुड़ गया है । (पूरन जोत जगै घट मह - तब खालिस ताह निखालिस जानै ।) के भाव कोई नहीं जानता सभी दाढ़ी तथा जल विशेष में ही मुक्ति समझ रहें हैं ये सभी बाह्य क्रियाऐं कैसे जीव को अन्तर में ले जायेंगी ताज्जुब ही है ।

"मन रे थिर रहु - मत कत जाही जीउ । बाहर ढूंढत बहुत दुख पावह - घर अमृत घट माही जीउ । अवगुण छोड गुणा कउ धावह - कर अवगुण पछुताही जीउ । सर अपसर की सार न जाणह - फिर-फिर कीच बुडाही जीउ । अंतर मैल लोभ बह झूठे - बाहर नावहु काही जीउ । निरमल नाम जपह सद गुरुमुख - अन्तर की गत ताही जीउ ।"

"नउ निध अमृत प्रभ का नाम । देही मह इसका बिस्राम ।"

"जिस जल निध कारण तुम जग आए - सो अमृत गुर पाही जीउ । छोडहु वेस-भेख-चतुराई-दुविधा - ऐहु फल नाही जीउ।"

"अमृत नाम भोजन हर देई । कोट मधे - कोई विरला लेई ।"

इत्यादी इन भावों का त्याग कर बाहर मुखी रंग तमाशों में कैसे आत्मा के कल्याण की कल्पना की जा सकती है । आत्मा ने असंख्य ही नये-2 जन्मों रूपी किस्म के कपड़े अनन्त समय धारण किये हैं पर कुछ बना नहीं फिर भी इस दिन और एक नया वस्त्र धारण करके नाचती है । और अपने को जीवन मुक्त ही समझती है ।

"रक्षाबन्धन" बिना उस एक की सुरक्षा के तो यह आत्मा बन्धन में ही है। स्त्री की सुरक्षा केवल पति से ही संम्भव है । पिता के घर तो वह बोझ ही समझी जाती है फिर पति की अनुपस्थिति में भी कैसे सुरक्षित रह सकती है । द्रौपदी जब तक

पति तथा समबन्धों के सहारे रही तब तक लज्जा ही उठानी पड़ी वो भी ऐसे पति जो अपने-2 क्षेत्रों में सिद्वियों द्वारा निश्चित रूप से रक्षित थे तथा कुल गुरू तथा पितामह आदि बुर्जुग भी प्रत्यक्ष रूप से तमाशा देख रहे थे फिर भी असुरक्षित ही साबित हुई । पर जब उसने सब पतियों सहित समबन्धों की आस छोड़ दी केवल उस सच्चे पति गोबिंद को पुकारा तभी सुरक्षित हो गयी और संसार असुरक्षित हो पृथ्वी का बोझ कम करने में मददगार साबित हुआ । फिर भी यह उन पतियों तथा समबन्धों का सहारा ही लेती हैं जो परलोक तो कल्पना में भी नहीं इस लोक में भी प्रत्यक्ष होने पर भी शर्मिंदा ही करने में मददगार हैं। काश यह सच्चे उस एक का शौक़ पैदा कर पाती तो कौन इसकी ओर आंख उठा कर देख सकता । "हर सा हीरा छाड के करह आन की आस । ते नर दोजख जाईगे, सत भाखै रविदास ।"

"होलिका" दहन से विचार करना चाहिये कि आत्मा कभी भूल से भी संसार में असुर वृति को धारण न करें और फिर परमार्थी रूहों के प्रति तो कभी कल्पना में भी नहीं । प्रहलाद भक्त को मारने के लिये उस के पिता तथा समबन्धी ही थे कारण उस एक का शौक़ ! विचार करना है कहीं हम भी यही कार्य तो नहीं कर रहे ! कहीं न कहीं हम भी जरूर किसी न किसी रूप में ईश्र्या, मान-सम्मान अथवा निजी स्वार्थो की खातिर इसी हिरण्य कश्यप

द्वारा बनाये गये इतिहास को ही दोहरा रहें हैं । इतिहास साक्षी है ईसा जी, नानक जी, अर्जुन देव जी, तेग बहादुर जी, तथा गोबिन्द जी के जिगर के टुकड़े छोटे-2 जिन्दें ही चुन दिये गये । कारण क्या सत्ता कायम करनी थी या कोई कामनाओं की पूर्ति थी ? सिर्फ उस एक का शौक़ जो केवल (सत्य- नाम) था । परमार्थी रूहों को अपने इन्सानी जन्म को सार्थक करने के लिये लड़ी जा रही लड़ाई में विघ्न डालने वाले उन्हें इन मार्गो से विमुख करने के लिये उनके द्वारा अपनायी गयी निकृश्ट क्रियाओं का क्या अन्जाम होगा। यहां तो ये भांग चढ़ा कर ढोल के आगे नाचते कूदते मुंह पर गुलाल मलते हैं पर उन्हें यह नहीं मालूम कोई इनकी प्रत्येक हरकत पर नजर रखे है । दरगाह में मुंह काला किया जायेगा और भांग की जगह विष्ठा तथा कूदने-नाचने के लिये जब नुकिले पत्थर तथा कीलों पर चलाया जायेगा और कमर लचकेगी तब सिर पर नुकिले मुगदरों की वर्षा सहनी पड़ेगी । तब होली पर किया गया अभ्यास नाचने कूदने वाला वहां लाज बचायेगा ! कार्य वही करना चाहिये जिससे लोक संवरे या परलोक । यहां तो इस क्रिया में कमाल है भाई लोक में भी मुंह काला और परलोक में भी यानी दोनों जगह दोनों हाथों में लड्डू भई वाह रे मास्टर घसीटा राम जी, मास्टर हो तो भाई ऐसा जो लोक और परलोक दोनों जगह ही पूरा पूरा ख्याल रखे !

"विजय दषमी" दरअसल मास्टर महात्मा घसीटा राम जी की विजय से सम्बन्धित तमाशा है पर प्रचार उल्टा ही किया जाता है उल्टे राम जो ठहरे ! क्या समझा रखा है इन्होनें देखो कागज का पुतला बनाओ उसे ये रावण कहते हैं फिर उसे बच्चों की तरह अग्नी भेंट करके मांस-शराब से चिपकते हैं और बहुत प्रसन्नता से अपने को मर्यादा पुरुषोत्तम राम ही समझते हैं अब कुछ शेष करना बाकी रहा ही नहीं ! सच क्या है जरा विचारें ! बेचारे उस रावण के केवल दस ही मुख थे वो भी उसने काट-काट कर गुरु जी के भेंट चढ़ा दिये मुश्किल से केवल एक ही बचा था । एक ही बलात्कार रंभा से हुआ तथा कुछ वेदों का टीकाकार पण्डित । ज्योर्तिवेद, आयुर्वेद आदि विज्ञानों का खोजी वैज्ञानिक इत्यादि कहाँ तक कहें इतिहास साक्षी है ऐसा कहलाने वाला रावण भी रूहानी मण्डलों से जब इस दो पैर एक सिर वाले नर रूपी जानवर को देखता है तो सुकुचा जाता है, लज्जा से उसका सिर झुक जाता है कारण जब यह पशु सड़क पर निकलता है तो इसकी डेढ़ इंच की आँख चार इंच की हो जाती है मजाल है कोई भी रूप इसकी नजर से बच कर निकल जाये (सभी प्रकार के सम्बन्धों सहित) दूसरा कमाल इसकी नजर में ये है कि देखते ही मन पहले भोग कर लेता है ! प्रतिफल ("निमख काम सुआद कारण कोटि दिनस दुख पावह । घरी मुहत रंग माणह फिर -

बहुर-बहुर पछुतावह") इस एक दिन के बलात्कारों की गिनती ही असंभव है बेचारे रावण का सिर लज्जा से क्यों न झुके जो कभी अपने समय का हिट हीरो कहलाता है उस की मिट्टी पलीत तो इस दो पैर के बिना पूंछ-सींग के पशु ने केवल एक दिन में ही कर दी। इस पशु में अनन्त गुण हैं ये तो केवल जानकारी के लिये एक तुच्छ सा उदाहरण दिया है अन्दर में झाकेंगे तो ब्यान करने के लिये लफज ही नहीं मिलेगें कारण गुप्त है आप कहते हैं तो थोड़ा सा हिन्ट (इशारा) कर देते हैं इसके अन्दर एक महान सिद्वी कार्य कर रही है उसके 36 मुख हैं (25 प्रकृति 3 शरीर 3 गुण 5 अवगुण) ये तो मुख्य तौर से कहा है वैसे इसके शरीर के अवयवों की गिनती नहीं की जा सकती ये ईर्ष्या, निन्दा, चोरी, झूठ आदि ऐसे असंख्य अंग हैं और इस सिद्वी का नाम महीरावण है जो गुप्त रूप से इस मानव कहलाने वाले पशु के अन्दर रोम-2 में बसा हुआ है जो अन्तर दृश्टि के बिना देखा ही नहीं जा सकता बताइये रावण की क्या मजाल जो इस ओर टेढ़ी आँख से भी देख सके । ये इस वक्त मर्यादा पुरुषोत्तम राम का ही अंग बना हुआ है जो और कोई नहीं मास्टर महात्मा रलिया राम जी ही हैं । एक राम दशरथ घर डोले । एक राम घट-2 में बोले । एक राम का सकल पसारा । हमरा राम त्रिह गुन ते प्यारा । ये पहले तीनों राम एक ही चक्की के बट्टे हैं और बेचारे असली चौथे को

जिस ने इन तीनों जैसे अंसख्य बनाये हैं कोई कल्पना में भी नहीं जानता । उसे जाने बिना ही मर्यादा पुरुषोत्तम बनाने का श्रेय केवल इन महान मास्टर रलिया राम जी की ही समर्थता है। सचमुच गुरू ऐसा ही होना चाहिये जो हींग लगे न फटकरी और रंग पड़ोसी भी बाल्टियां भर-2 ले जायें फिर भी सरोवर खाली न हो जरा देखो तो कमाल कागज का पुतला पुरुषार्थ और फल मर्यादा पुरुषोत्तम भई जय बोलो मास्टर जी की ।

"दीपावली" प्रकाश से सम्बन्धित है कोई भी असली प्रकाश तक न पहुँच सके इसीलिये यह लीला रची गई है । ऋषियों ने उस एक को जड़-चेतन में रमा होने के कारण रमईया अर्थात राम कहा, मास्टर घटिया राम जी ने प्रभु दशरथ जी के घर एक चलता फिरता राम 10 हजार से अधिक सालों के लिये भेज दिया । इन्होंने तो अपने पिता के वचनों को सार्थक करने के लिये 14 वर्श का बनवास काटा और हम डेरों में फरियाद कर आते हैं भई हमसे सेवा न हो सकेगी इन्हें अब अपने पास ही बुला लीजिये ! सारी राम लीला ही खत्म हुई । काश अगर ये ही राम जी भी कह देते तो सारी कहानी यहां भी खत्म हो गई होती । पर मास्टर उल्टा राम जी अपनी लीला रचना खूब जानते हैं । कौशल्या जी ने तो खुशी मनाई बेटा 14 वर्ष बाद झूठ पर विजय प्राप्त करके घर लौटा है । हमने तो 7 महीने (नौ महीने कौन माई का लाल इस

चंचल जमाने में गर्भ रूपी कैद में रहे) में ही 114 वर्श काट दिखाये और निकलते ही सच को निगल गये । अब जब सच है ही नहीं तो फिर किस की विजय की जाये । ऋशियों ने कहा कि "एक" तेज (ज्योत) रूप है तो हमने अपनी प्राण शक्ति रूपी तेल को इन्द्रियों रूपी दीयों में जलाना शुरू कर दिया । इससे जो प्रकाश उत्पन्न हुआ इसे देख-2 प्रसन्न हैं गरीबी में अमीर देश हिन्दुस्तान के वासी एक रात में जितने साधनों का होम करके ताली पीटते हैं शायद सारी नहीं तो काफी गरीबी में गरीबी पैदा की जा सकती है और यह कल्पों से निरन्तर हो रहा है कि हम अपना घर फूंक कर उत्पन्न प्रकाश से प्रसन्नता का अनुभव करते हैं झूठ के पुलिन्दें बन सच का होम करते हैं जिससे प्रकाश में बढ़ोतरी हो क्यों न हो मास्टर उल्टा राम जी के शिष्य जो ठहरे ।

राम जी ने अयोध्या लौट कर अपने प्यारों से कहा कि यदि आप सचमुच मेरे से प्यार करते हैं मुझे चाहते हैं तो सभी अपने-2 धर्म में दृढ़ता से स्थिर रहें और उस "एक" का ही केवल शौक़ रखें तभी मेरी आप पर प्रसन्नता होगी । हम भी कुछ कम तो हैं नहीं पूरा-2 हुकम मानने में तो विष्णु (चक्रपाणी) जी को भी पीछे ही छोड़ दें सिर्फ इतना ही किया कि "अधर्म" में निश्चय को दृढ़ किया और "एक" तो वही "संसार" जो अनन्त कल्पों से चाटते आ रहे हैं उसी का शौक़ बनाते जा रहे हैं । यहां राम जी

चूक गये हम भी तो मास्टर उल्टा राम जी के शिष्य हैं किसी साधारण मास्टर जी से तो नहीं पढ़ते । इन्हीं चक्रों में आप की लीला तो समाप्त हो जायेगी पर इन चक्रपाणी जी का चक्र कभी भी नहीं रूकेगा । इस चक्र के 84 लाख आरे हैं कोई कैसे बच सकता है ? ऋषियों नें तो कलम ही एक तरफ रख दी, भाई हम तो इस चक्र के एक चक्कर की भी अवधि बतानें में असमर्थ हैं फिर तेजी से घूम रहे इस चक्र के बारे में किन शब्दों का प्रयोग करें ! काश रूह कभी इस नकली तेज से निगाह हटा पाती, उसे तो इसके नाम से ही कम से कम दो महीनें तो तेज ज्वर चढ़ा रहता है और उसकी कमजोरी तो 12 महीनें ही व्याप्त रहती है । कम होने से पहले ही फिर से ज्वर तेज हो जाता है । इसी भ्रम में अनन्त कल्प बीत गये इसे अपने मूल तक का ज्ञान ही नहीं रहा । ये कौन है, कहां से आई है, कहां की रहने वाली है, इसकी क्या समर्थता है । जो बादशाह का अंश राज करने के लिये पैदा हुई थी उसकी ऐसी कमीनी हालत है कि कुत्तों - बिल्लों की जूनों में गंद में मुँह मारती फिरती हैं और नरकों में इसकी (कूक-पुकार को न सुणे ओथै पकड़ ओह ढोइआ) हाहाकार को कोई सुनता तक ही नहीं । क्या यही है हमारी (चालाकी-कपट) जिस पर हम नाज़ करते हैं का नतीजा तो फिर हमें विचारना चाहिये "प्राणी तू आयो लाहा लैंण । लगा कित कुफकड़े सभ मुकदी चली रैंण

। "पाखण्ड कीनै जम नहीं छोडै । लै जासी पत गवाई ।" । इन प्रेरणाओं का क्या भाव है और हम क्यों इन से अभी तक विमुख हैं ?

"ईसा मसीह" जी के जीते जी तो किसी ने उनका आदर करना तो दूर रहा जिन्दा ही सूली पर चढ़ा दिया । हद है दरिन्दगी की उन समाज-धर्म के ठेकेदारों की जिन्हें आज तक हमनें अपना गुरू बना रखा है और आगे भी ऐसी ही पूजा करते रहेंगे । फिर भी अपने को जीवन मुक्त ही समझते हैं । एक ही इशारा काफी है । यहूदा और पतरस जो दिन रात ईसा जी के साथ साये की तरह रहते थे और उन्हें उस रूहानी सत्य पर भरपूर अनुभव था जिस सत्य का वे प्रचार कर रहे थे तथा प्रेत बाधा जैसे दुखों से भी जीवों को राहत दिला रहे थे । इन्हीं दोनों में से एक यहूदा ने लोभ में आकर धर्म के ठेकेदारों के आगे मुखबिरी की यानी पकड़वाया और दूसरे पतरस को दावा करता था बार-2 जान तक कुर्बान कर देने का ने एक ही रात में मुर्गे की बाँग देने से पहले तक के समय में तीन बार पहचानने से इन्कार कर दिया उसे जिस ने उसे जीवन दिया था रास्ता दिया था अपना हम राही बनाया था । और आज जिन्हें (उस मार्ग की कल्पना में भी जानकारी प्राप्त नहीं है) के मार्ग दर्शन का ठेका ले रखा है । पूरी दुनिया को अपनी पैशाची हवस का शिकार बना कर स्वंय को

ईसा के प्यारे और जीवन मुक्त समझ बैठे हैं । सभी भेड़ें मार्ग से भटक चुकी हैं केवल चरवाहा (आंख वाले) ही इन भटकी भेड़ों को मंजिल तक पहुँचाने में मददगार साबित होगा । अन्यथा सभी मार्ग दर्शक (अंधा) सहित अंधे कुएें (८४) में गिरती चली जा रही हैं कोई विचार तक करने को तैयार नही । उन्होंने एक सच की खातिर अपने को जिन्दा सूली पर चढ़ाना मंजूर किया और आज हम उनके महान अनुयायी केवल और केवल झूठ की खातिर सारी दुनिया के जीवों को जिन्दा ही सूली पर चढ़ाते चले जा रहे हैं और संतुष्ट हैं कि कोई हमें देख ही नहीं रहा । "घडी चसे का लेखा दीजै, बुरा भला सह जीउ" । आज हम पशु बन चुके हैं दो पैर के जानवर एक दुम की ही केवल कमी है शक्ल बेशक इन्सान से मिलती जुलती है । अपने वृति-कर्म नहीं देखते जो पशुओं से भी निचली श्रेणी के हैं । मानव ईश का अवतार है उसने इसे अपना रूप दिया है हम परमात्मा बनने के लिये पैदा हुए हैं पर लोभ-काम ने हमें अन्धा ही बना दिया है । हम ईश तो क्या मानव कहलाने के भी अधिकारी न रहे । सोचा है कभी क्या हाल होगा इस आत्मा का जब इस से हिसाब लिया जायेगा ? कौन बचायेगा यानी कोई नहीं बड़ी कमीनी हालत इसकी होगी और ये सब इसको सहनी पड़ेगी ! "अजहू कछु बिगरिओ नहीं - जो प्रभ गुन गावै । कह नानक तिह भजन ते - निरभै पद पावे ।"

"जन्म दिन" आदि जो आज बैंड बाजों के साथ रंग तमाशा चल चुका है विचारने योग्य है क्या सचमुच ये एक खुशी का मौका है हमें प्रसन्न होना चाहिए ! देखा जाये तो महात्मा तक इस जन्म दिन से जीते जी तो बेखबर ही रहते हैं । उनके इस संसार से जाने के बाद हम उन्हें याद कराते रहते हैं अपनी तुच्छ बुद्धि द्वारा अपनायी गई निकृष्ट क्रियाओं से ! जीते जी तो वे बेचारे मौत की ही लड़ाई लड़ते रहते हैं उसी से उन्हें फुरसत तक ही नहीं मिलती कि इस ओर भी ध्यान दें। उन्हें केवल यही डर निरन्तर लगा रहता है कि यदि मौत जीत गई तो मुझे फिर घोर नरक (गर्भ रूपी) में पैदा होना पड़ेगा और फिर यही लड़ाई जो अधूरी रह गई है फिर से लड़नी पड़ेगी अतः किसी भी कीमत पर मुझे इस मौत पर विजय जीते जी ही प्राप्त करनी है मरने के बाद विजय तो दूर केवल मास्टर घटिया राम जी के ही दर्शन होंगे और फिर कर्मानुसार कुत्ता घसीटी होगी सुख तो सुपने में भी नाहीं । "कौन है जो इह तन देवे फूंक । अंधा लोग न जानई रहया कबीर कूंक ।" हालत लड़ने वालों की होती है । "फरीदा तन सुका - पिंजर थीया तलियां खूंडह काग । अजै सु रब न बाहुड़िओ - देख बंदे के भाग । कागा करंग ढडोलिया - सगला खाइआ मास । ए दुइ नैना मत छुहउ - पिर देखन की आस" । ये सच्चाई ("घुंघरु बांध पग आत्मा नाचे रे") तालियां पीटती रूहों को कौन बेचारा

समझाये अर्थात चाह कर के भी इनका कल्याण नहीं किया जा सकता । (अंत काल स्त्री सिमरै वेस्वा जून वल वल उतरै....) अनुसार कौन इन्हें नपुसंक की श्रेणी से बचा पायेगा ? और घुघंरू क्या किसी सेशन कोर्ट के दिये हुऐ है नहीं । आर्डर केवल सुप्रीम कोर्ट का ही लागू होता है । सभी सरकारें उस हुकम के आगे नत मस्तक हैं । दिक्कत सिर्फ इतनी ही है कि आज तक गद्दी को गर्म करने वाले किसी भी नाजुक महंत की ये सच्चा हुकम ब्यान करने की हिम्मत ही नहीं हुई कारण उसे अपनी भेंट-पूजा, निजी स्वार्थो की पूर्ति में कमी, मान-सम्मान के भ्रष्ट हो जाने का अंदेश सदा ही एक दीर्घ रोग के रूप में लगा ही रहता है । अर्थात मनुष्य जन्म में किसी भी कामना का प्रतिफल "जी हजूर दाता जी" से हवा नहीं हो जाता । सच कितना ही कड़वा क्यों न हो हजम इस आत्मा को करना ही पड़ेगा । जीते जी कर लेगी तो इस "हउ" रूपी रोग से छूट सदा के लिये आनन्द मनायेगी अन्यथा "दिनस चढ़ै फिर आथवै - रैण सभाई जाई । आंव घटे - नर न बूझै - नित मूसा लाज टुकाई" । सारी पूंजी इस रंग तमाशे में ही खत्म हो जायेगी और फिर इसे चोटें सहनी पड़ेंगी । "कह कबीर तब ही नर जागै । जब जम का डंड मूंड मै लागै" । पर इस वक्त फिर जागने से सिर्फ पछतावा ही हाथ लगेगा । ताज्जुब तो यह है कि निरन्तर मौत नजदीक आ रही है आयु घटती ही जा रही है फिर

भी यह कटी आयु रूपी रस्सी से लटकना पसन्द करता है छत पर चढ़ना नहीं । "हउ विचि जमया हउ विचि मुआ" को सिद्ध करता हुआ निरन्तर अनन्त कल्पों से इसी में रुचि रखता है । बिना पाप के माया एकत्र नहीं होती । और बिना माया के जन्मदिन इसे कभी याद भी नहीं आते । यही "हउ" है जिस का प्रतिफल निश्चित है । दिया लेने आयेगा, लिया देने । अनन्त काल से ये चक्र इसने चला रखा है । ऋषि उपदेश करते हैं कि मनुष्य का पाप अथवा पुण्य उसके अन्न में रहता है । जो दूसरे का अन्न खाता है मानो वह पाप ही खाता है । लेकिन इसे तो जुगाली पसन्द है ना भी बुलाओ तो किसी बहाने स्वंय ही गले में ये अन्न रूपी फंदा डालने को तैयार है । कहते हैं जब गीदड़ की मौत आती है वो शहर की ओर दौड़ता है । यही हाल "हउ" रूपी दीर्घ रोग में फंसे नर का है जब इसे नरकों को देखने का शौक़ जागृत होता है तो यह पराये अन्न की ओर दौड़ता है । जैसे जन्मदिन रूपी फंदे ये गले में स्वंय ही डालता है उसी तरह मृत्यु के भी । जो "मुरदों का शौक़ करते हैं वे मृत सम्बन्धियों के शोक सागर में सदा के लिये डूब जाते हैं" । उनका तरना भी आसान नहीं होता जीते जी तो न "जागता" है न पढ़ता, पर इसे शौक़ है पढ़ने का फिर क्या किया जाये इस की इस आखिरी ख्वाहिश को कैसे पूरा किया जाये ? मृत लोक में आखिरी ख्वाहिश पूरी करने का

खूब विधान है । तब फिर इसे मरने के बाद पढ़ाया जाता है ! "झूठी देखी प्रीत जगत में झूठी रे" । बेशक उसके जीते जी सच्ची ही थी और हमारे लिये भी घर आ कर नहा कर सच्ची ही हो जायेगी । "राम-नाम सत" है बेशक जीते जी राम नाम झूठ ही था और हमारे लिये भी घर आ नहा कर के फिर से राम नाम झूठ ही रहेगा । अगर ये ऐसा न होता तो जीते जी संसार को झूठा साबित करता और राम नाम को सच जान धारण करता । पर काश सभी जानते हैं अब न ये पढ़ सकता है और न हम इसे पढ़ा सकते हैं यानी जो जीते जी अनपढ़ रहा मर कर कभी क्या विद्वान हो सकता है पर हम इस गिरे हुए फल को पेड़ पर फिर से लगाने की कोशिश कर रहें हैं जो कभी कल्पना में भी ये क्रिया पूरी होने की कोई सम्भावना ही नहीं है । पर जीते जी ताली पीटने से फुर्सत हो तभी न गाड़ी कुछ आगे धकेली जाये सभी धक्का स्टार्ट हैं कुछ चल कर फिर रूक जाती हैं क्या इलाज है इन खटारा गाड़ियों का ? यानी कुछ नहीं जीओ और मरो बस यही विधान है इनके लिये ।

"मरता मरता जग मुआ मर भी न जाने कोए । ऐसी मरनी जो मरै - फिर बहुर न मरना होए ।"

"शब्द मरै सो मर रहै । फिर मरै न दूजी बार ।" "जित मरने ते जग डरै मेरे मन आनन्द । मरने से ही पाईये पूर्ण परमानंद ।"

ही केवल भेद है । खुशी मनाने का आनंद केवल उस विरली आत्मा को ही प्राप्त होता है जो जीते जी इस शब्द को अपना सर्वस्व होम करके प्राप्त करती है केवल उस "एक" की कृपा से । यही उसका सच्चा जन्मदिन है जिसे प्राप्त करने के लिये उसे मानुश का तन दिया गया है । "वडे भाग मानुश तन पावा । सुर दुर्लभ सम ग्रन्थहि गावा । साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाई न जेहिं परलोक संवारा । सो परा दुख पावई सिर धुन धुन पछुताई । कालहु कर्मह इसवरह मिथ्या दोश लगाई ।" केवल यही नर जीवन का सार है । "चेतना है तउ चेत लै निस दिन मै प्राणी । छिन-छिन अउध बिहात है - फूटै घट जिउ पानी । हर गुन काह न गावही मूरख अगिआना । झूठे लालच लाग कै नाह मरन पछाना । अजहू कछ बिगरिओ नहीं जो प्रभ गुन गावै । कह नानक तिह भजन ते निरभै पद पावै"

"जाग लेहु रे मना जाग लेह कहा गाफल सोइआ । जो तन उपजिआ संग ही सो भी संग न होइआ । मात पिता सुत बंध जन हित जा सिउ कीना । जीउ छूटिओ जब देह ते डार अगन मैं दीना । जीवत लउ बिउहार हैं जग कउ तुम जानउ । नानक हर गुन गाइ लै सभ सुफन समानउ ।"

"हरि जस रे मना गाइ लै जो संगी है तेरो । अउसरु बीतिओ जात है कहिओ मान लै मेरो । सपंत रथ धन राज सिउ अत नेह लगाइओ । काल फास जब गल परी सभ भइओ पराइओ

। जान बूझ कै बावरे तै काज बिगारिओ । पाप करत सुकचिओ नहीं नह गरब निवारिओ । जिह बिध गुर उपदेसिआ सो सुन रे भाई । नानक कहत पुकार कै गह प्रभ सरनाई ।" ऐसा जन्मदिन कोई विरली दुर्लभ आत्मा ही मना पाती है जो प्रभू कृपा से इस बाणी का चरितार्थ रूप बन जाती है अर्थात जीते जी अपनी "शोक" सभा मनाने वाली रूह ही इस दुर्लभ जन्म रूपी आनन्द को प्राप्त होती है और उसकी इस खुशी में इस मुल्क की कोई भी काग रूपी आत्मा शामिल होने की कल्पना तक नहीं कर सकती। जीते जी अपना जन्मदिन नहीं केवल "शोक" मनाने वाली आत्मा फिर इस मुर्दा घाटी में कभी भी नहीं देखी जाती ।

"ईद" तो सच्ची केवल उन्हीं रूहों के नसीब में है जो अपने घर पहुँच चुकी । जो इन मुल्कों में 84 लाख जूनों में भटक रहीं हैं उनकी दशा तो सचमुच सोचनीय है । पर देखने में क्या आता है। "दिन में रोजा रहत है । रात हनत है गाय । येहि खून वहि बंदगी । क्यों कर खुषी खुदाय ।" एक जून दूसरी जून का खून अल्लाह के नाम पर बहाती-तड़पाती है और इसे कुर्बानी की संज्ञा देकर के मांस-खून और मद से ईद की मुबारक दी जाती है। भूल जाते हैं कि "एक नूर ते सभ जग उपजया"। एक माली अपने बाग के किसी भी फूल के नष्ट होने को कुर्बानी की संज्ञा कैसे दे सकता है ? प्रसन्न होना तो दूर रहा कैसे इन निकृष्ट

क्रियाओं से परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त की जा सकती है । "उम्र गवाई विच मसीति । अन्दर भरया नाल पलीती । कदे नमाज तोहीद न कीती । हुन की करना है शोर पुकार" । स्पष्ट है कि इन्हें इन सब क्रियाओं का भयानक बदला चुकाना पड़ेगा और कोई वहां इन की सुनने वाला न होगा । इस दरिन्दगी भरी निकृष्ट बाह्य क्रियाओं से कैसे आत्मा के कल्याण की कल्पना की जा सकती है। "भट नमाजां, चिकड़ रोजे कलमे ते फिर गई स्याई । बुल्ले नूं शाह अन्दरों लबया, भुल्ली फिरे लुकाई ।" "वेद- कतेबां पढ़-पढ़ थक्के । सजदे करदयां घस गये मत्थे । न रब तीर्थ न रब मक्के । जिस पाया तिस नूर अनवार ।" इन भावों को ये लोग कल्पना में भी ग्रहण नहीं कर सकते जिसे आज जिबह किया जा रहा है, एक घड़ी अवश्य आयेगी जब इसकी गर्दन नीचे होगी और जिबह होने वाले के हाथ मे छुरी चमकेगी । यह भाजी अनंत काल से चलती जा रही है सदना जी कसाई से बकरे नें यही कहा था कि ये क्या तूं नई भाजी बनाने लगा है सोच ले जब मेरी बारी आयेगी तब तेरा भी यही हाल होगा । वही कसाई फिर भाई सदना जी भक्त बन गये । पर ये रूहें जागने को तैयार नहीं "ये जग मीठा अगला किन डीठा" में ही डूबते चले जा रहे हैं । "बकरी पाती खात है वा की तारै खाल । जो बकरी खात है तिन का कौन हवाल ।" कारण केवल धर्मात्मा बने धर्म के ठेकेदारों द्वारा चलाये जा रहे पंथ जो स्वंय अंधे हैं डूबे हुऐ हैं उन्हीं डूबों का ये आत्मा

सहारा ग्रहण करती हैं कब कैसी तरेंगी ये या तो भगवान ही जानते होंगे या ये महंत ! अर्थात स्वयं ईश भी इनकी ये हालत देख सकते में डूब हैरान हो रहा है । जहां मांस -मद और काम में फंसे हैं वहीं पराये हक को भी इसके साथ चाटते जा रहे हैं "हक पराई नानका उस सुअर उस गाय । गुर पीर हामां तां भरे जे मुरदार न खाई । गली भिस्त न जाइये छूटै सच कमाई । मारण पह हराम मह होई हलाल न जाई । नानक गली कूड़ई कूड़ो पल्ले पई ।" और चालाकी-कपट की हद है इस मुरदार कमाई में दान-पुण्य भेंट-पूजा-लंगर आदि पर खर्च कर के सफेद वस्त्र डाल करके ही केवल अपने को उजला अर्थात हलाल समझ लेता है। ये नहीं जानता "जे मुहाका घर मुहें घर मुह पितरी देई । अगे वस्त सिजाणिये पितरी चोर करेई । वडिअहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ । नानक आगै सो मिलै जि खटै घालै देई ।" आगे सब चालाकी-कपट पकड़ी जायेगी, ऐसा व्यापार (परमार्थ को) कराने वालों के तो दरगाह में हाथ कलम होंगे और करने वाले आनंद मनायेंगे ! कैसी सुन्दर परमार्थ ये धर्म के धर्मात्मा बने अंधे ठेकेदार प्राप्त करवा रहे हैं यही वह भ्रम है जो मास्टर घटिया राम जी ने यकीनी करवा रखा है। "किराये की भक्ति परवान है" आत्मा को और क्या कुछ चाहिये कि बिना कुछ किये ही किला फतेह हो गया रिमोट सिस्टम से, ये नहीं जानते नरकों मे तख्ती लग

गई इसके नाम विशेष की । "बेचारे" कबीर जी "हँस हँस कंत किने न पाइयो जिन पाया तिन रोये । हँसी खुशी पिया मिले तो कौन दुहागन होये । सुखिया सब संसार है खावै और सोवै । दुखिआ दास कबीर है जागै है और रोवै है !" कर्म करते वक्त तो आत्मा अंधी और बहरी हो जाती है सिर्फ अब भुगतने के लिये केवल तैयार रहे । मौत सिर पर खड़ी दहाड़ रही है इससे पहले कि वह अपना फंदा डाले तूं अपना होम वर्क कर ले । पर इसे ताली पीटने-नाचने कूदने, रंग तमाशे, सीख-कबाब से फुर्सत मिले अर्थात जागे तभी तो कलम हाथ में ले । "कर कर करना लिख लै जाह । आपे बीज आपे ही खाह । नानक हुकमी आवह जाह ।" कर्म इतने मलिन है कि चाह करके भी जागने नहीं देते कोई वाणी कानों में तो नही फूंकी जाती फिर भी वही क्रिया रूह धारण किये रहती हैं यही मुख कारण है "कर्म की मलिन प्रबलता" । जैसा भयानक महीन जाल मास्टर घसीटा राम जी ने रचा है इस की कल्पना भी नहीं हो सकती जिस ओर मर्जी बढ़ा लो केवल फंदा ही फंदा मिलेगा ! केवल ईश ही जो इस खेल को रचा रहा है इस में समर्थ है शेष अधूरा ही है और उसके तुठे बिना कुछ भी कल्पना असंम्भव ही है। "सगलया भउ लिखिया सिरि लेखु । नानक निरभउ निरंकार सच एक ।" "जि विधि गुर (शब्द) उपदेसिया सो सुन रे भाई । नानक कहत पुकार के गह प्रभ सरणाई ।" और कोई भी उपाय इस जन्म मरन रूपी दुख से बचने का नहीं है ।

एक जन्म का दुख ही बयान से बाहर है तो फिर और किन शब्दों से और कैसे बयान किये जाये । यहां तक बात रहती तो भी विचार करते पर क्या किया जाये "जे रत लगे कपड़े जामा होई पलीत जो रत पीवह "माणसा" तिन कउ निरमल चीत । नानक नाउ खुदाई का दिल हच्छे मुख लेह । अवर दिवाजे दुनी के झूठे अमल करे ।" लोभ और झूठ में इस नर रूपी जहाज को जो तैरने के लिये मिला था डुबो दिया अपनी सिआणत में ।

"मिहर मसीत सिदक मुसल्ला हक हलाल कुराण । सरम सुनंत सील रोजा होह मुसलमान । करणी काबा सच पीर कलमा करम निवाज । तसबी सा तिस भावसी नानक रखै लाज ।" इन भावों का चरितार्थ ही दरगाह में विचारशील है शेष तो सभी "कूड़ राजा, कूड़ प्रजा, कूड़ सभ संसार । कूड़ मंडप, कूड़ माड़ी, कूड़ बैसणहार । कूड़ सोइना, कूड रूपा, कूड़ पैहनणहार । कूड़ काईआ, कूड़ कपड़, कूड़ रूप अपार । कूड मीआ, कूड़ बीबी खप होऐ खार । कूड़ कूड़ै नेह लगा विसरिआ करतार । किसे नाल कीचै दोस्ती सभ जग चलणहार । कूड़ मिठा, कूड़ माखिउ, कूड़ डोबे पूरू । नानक वखाणै बेनती तुध बाझ कूड़ो कूड़" । सच्ची ईद तो वही मनायेगा जो इस कूड़ को अपने हृदय रूपी महल से वगा कर बाहर फेंकेगा और वहां केवल "एक" का ही आईना तराशेगा।